नई ग़ज़ल

نئی غزل

شمارہ چہارم

उषा प्रकाशन जोधपुर



भूमिका

बहुत दिनों से उर्दू की साहित्यिक ग़ज़ल में दिलचस्पी रखने वाले पाठक तरह तरह की ग़लतफ़हमियों का शिकार हैं। इसका एक कारण तो यही रहा कि साहित्यिक चीजें लिप्यान्तरित होकर पाठकों तक नहीं पहुँची, क्योंकि प्रकाशकों का उद्देश्य पैसा बटोरना ही रहा अतः उर्दू की वे ग़ज़लें ही हिन्दी पाठकों के सामने आई जो मुशाइरों में 'हिट' हो चुकी थी या जिनमें कॉलेज-कैम्पस की रोमानियत भरी होती। अतः उर्दू ग़ज़ल के नये तेवर से हिन्दी पाठक वंचित रहा।

प्रस्तुत संकलन इसी दृष्टिकोण से संकलित किया गया है ताकि नमूने के तौर पर ही सही उर्दू की उन ग़ज़लों का संक्षिप्त-सा परिचय हिन्दी के पाठक वर्ग के सामने प्रस्तुत हो जाय जो विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान में लिखी जाती रही हैं।

ऐसे संक्षिप्त संस्करण में जाहिर है कुछ महत्त्वपूर्ण नाम न चाहते हुए भी छोड़ने पड़े हैं। सुहृदय पाठक इस मजबूरी को समझेंगे, ऐसी आशा है एवं शायर बन्धु भी इसे अन्यथा नहीं लेंगे, ऐसा उनकी रचनाधर्मिता के विश्वास पर कहा जा सकता है।

संकलित ग़ज़लों में सम्पादक की पसन्द को बहुत कम हस्तक्षेप करने दिया गया है, लेकिन पसन्द ने कहीं-न-कहीं अपना कार्य किया है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

उर्दू के उच्चारण को ध्यान में रखते हुए यथासम्भव वर्तनी का प्रयोग भी वैसा ही किया गया है।

यदि पाठक वर्ग को यह प्रयास उचित जान पड़ा तो भविष्य में अन्य विधाओं के संकलन भी प्रकाशित करने का प्रयास किया जायेगा।

ग़ज़ल : एक यात्रा

बुनियादी तौर पर गजल को प्रेमिका से बात करने का फ़न समझा जाता रहा है। कुछ लोगों ने गजल को औरतों से बातचीत करना माना है तो कुछ ने उनसे सम्बन्धित बात करना।

सातवीं सदी हिज्री में शम्सुद्दीन फैस बिन राजी ने कहा गजल—"हदीसे-जनां-ओ-सिफते-इश्क बाजी ईशा" है। शायद इसी से लोगों ने यह मतलब निकाला हो कि गजल केवल औरतों से या औरतो के सम्बन्ध में बात करना है। लेकिन वही 'राजी' जब ग़ज़ल को परिभाषित करता है तब लिखता है :

> जब खूंख्वार जंगली कुत्ते हिरन का पीछा करते हैं और हिरन की जान पर बन जाती है तो वह मुकाबले के लिए तैयार हो जाता है, उस समय वह एक ऐसी दर्दनाक आवाज पैदा करता है जिसमें यह तत्व भी मौजूद होता है कि मैं जान पर तो खेल गया हूं लेकिन दुश्मन को भी नुकसान पहुंचाऊंगा, तो गोया उस दर्दनाक आवाज के साथ खुशी की कैफ़ियत भी मिल जाती है। इसी आवाज को ग़जल अल्क़ाब कहते हैं और इसी वजह से हिरन ग़ज़ल कहलाता है।

लेकिन लगता है 'राजी' की यह परिभाषा लोगों को पसन्द नहीं आई वरना मूल परिभाषा को इस तरह नजरअंदाज करने का कोई औचित्य समझ में नहीं आता। खैर, गजल की बुनावट पर एतराज करने वाले और उसके स्वभाव को कोसने वाले यदि 'राजी' की उपरोक्त परिभाषा को ध्यान से पढ़ लें तो उनकी काफी मुश्किलें आसान हो सकती हैं।

कुछ लोगों के मतानुसार गजल का अर्थ कातना-बुनना है, जो सही नहीं, क्योंकि जिस शब्द का अर्थ कातना-बुनना है वह ग़ज़ल नहीं ग़ज़ल है; जिसकी वजह से प्रसिद्ध सूफी फकीर 'इमाम' इमाम ग़ज़ाली कहलाये।

गजल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बताया जाता है कि वह अरबी तश्बीब का परिवर्द्धित रूप है। लेकिन डॉ० वजीर आगा उसे अरबी वंशज की बजाय

ईरानी वंशज मानते हैं एवं ईरान की प्राचीन काव्य-विधा 'चामा' से उसका सम्बन्ध जोड़ते है। अल्लामा शिब्ली के नज़दीक 'गजल' 'कसीदे' के प्रारम्भिक शेरों का विस्तार है—जो इश्किया हुआ करते थे। उन शेरों को 'कसीदे' से अलग कर लिया तो गजल बन गई। तो इस तरह अल्लामा शिब्ली और डॉ० आगा दोनों गजल को फारसी काव्य-विधा का ही सशोधित, परिवर्द्धित या विस्तार रूप मानते है। यह अलग बात है कि शिब्ली उसे 'कसीदे' का तो डॉ० आगा 'चामा' का रूप मानते हैं।

फारसी गजल का उत्स चाहे 'कसीदा' हो या 'चामा' लेकिन इतना तो निश्चित है कि उर्दू मे गजल फारसी से ही आई, डॉ० राही मासूम रज़ा जैसे लोग चाहे उसकी प्रारम्भिक शक्ल दोहो मे तलाश करें या किसी और मे।

अल्लामा बृजमोहन दत्तात्रय 'कैफी' के मुताबिक उर्दू की पहली गजल पडित चन्द्रभान 'बिरहमन' ने कही थी, जो शाहजहाँ के दरबार मे मीर मुशी एवं फारसी के शाइर थे। नमूने के तौर पर उस गजल के तीन शेर प्रस्तुत हैं—

खुदा जाने ये किस शहर अन्दर हमन को ला के डाला है।
न दिलवर है, न साकी है, न शीशा है, न प्याला है॥
पिया के नॉव की सुमरन किया चाहूँ, करूँ कैसे।
न तसबी है, न सुमरन है, न कंठी है न माला है॥
'बिरहमन' वास्ते अश्नान के फिरता है बम्बासी।
न गंगा है, न जमना है, न नद्दी है न नाला है॥

: २ :

'वली' और अमीर 'खुसरो' के बाद गजल मीर तकी 'मीर' के हाथों मे पहुँची। 'मीर' की गजल भावनाओ से ओत-प्रोत है। अपनी वंशानुगत विशेषताओ से 'मीर' ने फकीराना स्वभाव पाया था, अतः उनका इश्क भी मिसाली इश्क है। उनकी भाषा सहज एव अपने युग की सस्कृति की बोलती तस्वीर है। 'मीर' का युग दो विभिन्न सस्कृतियों का युग है। पहला युग दिल्ली का है। दिल्ली की शाइरी अन्तर्मुखी है। उसमे सादगी है लेकिन सादगी को सरलता का पर्याय समझना हमारी भूल होगी, वह सहजता के ही समीप है; जबकि लखनऊ की शाइरी बहिर्मुखी है, इसीलिये उसमे एक विशेष रख-रखाव मिलता है। इन दोनों स्कूलों के दृष्टिकोणों का यह अन्तर राजनैतिक एव सामाजिक परिवेशो के अन्तर मे निहित है। 'मीर' ने अपने जीवन का पहला भाग आगरा और दिल्ली मे, और दिल्ली उजड़ने के बाद दूसरा लखनऊ में गुजारा। लेकिन उनकी फकीराना फितरत ने उन्हे स्वभाव से देहल्वी ही बनाये रखा। 'मीर' के अतिरिक्त मीर 'दर्द', 'इंशा', 'अमानत' आदि वे शाइर है जिन्होने अपने अपने ढग से गजल को

लाभान्वित किया।

'मीर' के बाद दिल्ली मे 'गालिब', 'मोमिन', 'ज़ौक़' आदि ने और लखनऊ में 'नासिख़', 'आतिश' वग़ैरह ने गजल की बागडोर सँभाली। इस युग को अगर गजल का स्वर्ण-युग कहा जाय तो गलत न होगा। लखनऊ मे 'नासिख' जहाँ ज़बान को सजाने-सँवारने का काम कर रहे थे वहाँ दिल्ली में 'गालिब' 'मोमिन' गजल को अभिव्यक्ति के नये आयाम दे रहे थे। संक्षेप मे, इस युग की देन वह काव्य-साहित्य है जिसे आज उर्दू का क्लासिक कहा जाता है। लेकिन भाषा के सजाने सवारने वाले इस कार्य के फलस्वरूप ही उर्दू में उस्ताद-शागिर्द की परम्परा को हवा मिली। इस्लाह (संशोधन) की इस परम्परा से शाइरी को जहाँ कई फायदे हुए वहाँ अनेक नुकसान भी उसे भुगतने पड़े, जिनमे से कुछ तो ऐसे थे जिनकी क्षति-पूर्ति आज तक न हो सकी, जिनमें अंधानुकरण सर्वोपरि है। मिसाल के तौर पर शब्दों की प्रामाणिकता, उस्तादों के कलाम (कविता) से प्रस्तुत की जाती और उस्तादो के यहाँ न मिलने पर उस शब्द को टकसाल बाहर या अपरिचित कहकर इसके लिये शाइर की भर्त्सना की जाती।

ऐसे में हर शाइर के मन में 'उस्ताद' कहलाये जाने का शौक जोर मारने लगा जिसकी वजह से कुछ ऐसे 'शागिर्द-रशीद' वजूद में आये, जिनका साहित्य या शाइरी से खुदा वास्ते का बैर था। अतः उन शिष्यों को उस्ताद स्वयं गजलें लिख-लिख कर देते। ऐसे शिष्यों की भीड़ ने सुसभ्य और सुसस्कृत लोगों को ऐसा सशंकित किया कि वे हर कमउम्र शाइर को मुतशाइर (जो शाइर न हो पर शाइर बना फिरे) समझने लगे, जिसकी चपेट से बेचारे पंडित दयाशंकर 'नसीम' भी न बच सके। 'नसीम', 'आतिश' लखनवी के अजीज शागिर्द थे। किसी विद्वेषी ने उड़ा दी कि उनकी मशहूर मनसवी 'गुलज़ारे-नसीम' उनकी नहीं, 'आतिश' की है, जो प्रेम-वश नसीम' को दे दी गई है। अन्धा क्या चाहे; दो आँखें, जाहिलों की जमाअत ले उड़ी और तिल का ताड़ कर दिखाया। लेकिन संजीदा लोगों की नजर में तो वह मसनवी 'नसीम' की ही रही।

इसके साथ-साथ मुशाअरों की सरगर्मियो ने भी उर्दू गजल को काफी खराब किया। एक ज़माने में तो अच्छा शेर ही उसे समझा जाने लगा था जिसे मुशाअरा खत्म होने के बाद श्रोता गुनगुनाते हुए बाहर निकलते। इस परिभाषा के युग ने गजल को दिल्ली से 'दाग' और लखनऊ से 'अमीर' मीनाई जैसे ग़ज़ल बाँकुरे दिये। एक तरफ जहाँ इस युग मे चटखारेदार ज़बान का सुन्दर प्रयोग हुआ वहीं दूसरी तरफ विषय-वस्तु के दृष्टिकोण से गजल स्तरहीन हो गई। इस युग की गजल नायिका, एक वैश्या के रूप में सामने आती है और पूरी गजल औरत के ही इर्द-गिर्द घूमती है। ऐसी ही गजलों से झल्ला कर मोहम्मद हुसैन 'आजाद' और 'हाली' नज़्म की तरफ मुड़े थे।

इसके बाद गजल डॉ० इकबाल, असगर गोण्डवी, फ़ानी बदायूनी, यास यगाना चंगेजी, हसरत मोहानी, फ़िराक गोरखपुरी, जिगर मुरादाबादी वगैरह तक पहुँची। 'इक़बाल' का चिन्तन और इस्लामी दर्शन उनकी गजलो में भी दिखाई देता है, साथ ही उनका सँभला हुआ लहजा, उन्हे अपने उस्ताद दाग देहल्वी से अलग करता है। उनकी गुरु-गंभीरता ग़ज़ल स्वभावानुकूल तो नही थी, लेकिन गजल को दिया गया उनका योगदान अवश्य याद रखा जायेगा। 'इकबाल' के इस्लामी दर्शन के साथ 'असगर' का तसव्वुफ भी ग़ज़ल को उसकी रंगीनियो से मुक्त कराने मे काफी मददगार साबित हुआ।

पूर्व काल मे जिस तरह गजल से तंग आकर 'आजाद' और हाली' ने नज्म के युग की दागबेल डाली थी ठीक उसी तरह 'दाग' के शागिर्दों की मुशाअ़रामार गजलो से आजिज़ लोगो को भी वे नौजवान शाइर मिल गये, जिन्होंने बाद मे तरक्कीपसन्द तहरीक (प्रगतिशील आन्दोलन) की शुरूआत की। इसी तहरीक के अन्तर्गत कुछ अतिवादी लोगों ने गजल को उसके सांस्कृतिक परिवेश से काट-कर एक हथियारस्वरूप काम मे लाना चाहा, लेकिन गजल जिसमें संस्कृति और संस्कृति जिसमे गजल घुल-मिल गई थी, उसे उखाड़ फेंकना आसान नही था। इधर खास और आम दोनों ही तब्के गजल के शैदाई थे, अतः शाइरी को एक विशेष प्रयोजन से प्रयोग करने वाले एवं हर रचना में राज-नैतिक दृष्टिकोण तलाशने वाले इन अतिवादियो की ज्यादा नही चल सकी। आजादी के पहले तक तो किसी न किसी तरह गजल में इन अतिवादियों की भी चलती रही क्योंकि उस वक्त स्वतंत्रता प्राप्त करना ही मुख्य उद्देश्य था, लेकिन स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद उनकी आवाज पर लोगों ने ध्यान देना बंद कर दिया। और तो और ख़ुद उनके साथियो ने भी ऐसी गैरजरूरी पाबन्दियो को स्वीकारने से साफ़ इन्कार कर दिया। अन्त मे 1953 ई० मे पूर्व मैनीफेस्टो में संशोधन किया गया जिसमें कहा गया कि साहित्य को कला के दृष्टिकोण से भी सुन्दर और आमपसन्द होना चाहिये, और वे लोग जो सिर्फ सियासी या मआशी (आर्थिक) नजरियों को शाइरी मे ढाल देते हैं और साहित्य के तकाजे पूरा नहीं करते वे तरक्कीपसन्द तो बन सकते है साहित्यकार नही बन सकते। लेकिन दूसरी मस्लितयाँ उन्हे स्वीकार्य न थी। सख्तियो से छूट जाने वाले शाइरो ने उस सम्वेदना को अभिव्यक्ति दी जो तरक्कीपसन्दो मे निषिद्ध थी। जिसकी एक मिसाल स्व० जाँ निसार 'अख्तर' हैं। 'अख्तर' कहते हैं—

हमने इन्सान के दुःख-दर्द का हल ढूंढ़ लिया।
क्या बुरा है जो ये अफवाह उड़ा दी जाये॥

शाइरी को विशेष प्रयोजन के तहत प्रयोग करने का अफ़सोस 'अख़्तर' के यहाँ इस तरह अभिव्यक्त होता है :

क्या पता हो भी सके इसकी तलाफ़ी कि नहीं।
शाइरी तुझको गंवाया है बहुत दिन हमने॥

ग़ज़ल दुश्मनी के बावजूद तरक़्क़ीपसन्द युग का एक महत्त्वपूर्ण योगदान भी रहा है। और वह है—ग़ज़ल का नया लहजा। अर्थात् वह अंदाज जो ग़ज़ल की पहचान था और जिसे बाद के शाइरों ने उससे छीन लिया था—उस ग़ज़ल से, जो 'मीर' के मुकद्दस हाथों में परवान चढ़ी, जो सूफ़ी फ़क़ीरों की गोद में खेली, मुकद्दस-मजारों पर जिसने घुटनों के बल चलना सीखा, जिसे 'ग़ालिब' ने विवेक और 'मोमिन' ने बात करने का ढंग सिखाया था, वही ग़ज़ल जो अब सिर्फ़ औरत के अंगों का वर्णन मात्र बन कर रह गई थी, उस ग़ज़ल को जिसे रंगीन तबीअत के शाइरों ने कोठे पर बिठा दिया था, तरक़्क़ीपसन्दों ने उसे वहाँ नहीं रहने दिया। ग़ज़ल के शिल्प की तरफ से उदासीन रहने के बावजूद उन्होंने ग़ज़ल को नई भाषा दी—हालाँकि वह भाषा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से उनके उद्देश्य की पूर्ति मात्र थी—परन्तु वह ग़ज़ल जो कोठों का शृंगार थी, अब संघर्ष के गीत एवं इन्क़लाब के गीत गाने पर मजबूर थी, जो उसके स्वभावानुकूल न था।

लेकिन तरक़्क़ीपसन्दो मे भी जिन लोगों ने ग़ज़ल को 'माध्यम' न मानते हुए उसका सम्मान किया, उसमे फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' का नाम उल्लेखनीय है। 'फ़ैज़' अनेक स्थलों पर नज़्म से बेहतर ग़ज़ल कहते दिखाई पड़ते हैं। उनके शेरों से महसूस होता है कि यदि उन्होंने ग़ज़ल पर ज्यादा तवज्जो की होती तो ग़ज़ल को एक और महान शाइर मिल सकता था। 'फ़ैज़' के अतिरिक्त जाँ निसार 'अख़्तर' 'मजाज़' मख़्दूम, ग़ुलाम रब्बानी 'ताबाँ', 'जज़्बी' वगैरह के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ग़ज़ल के साथ तरक़्क़ीपसन्दों का दूर तक निबाह तो न हो सका, लेकिन भाषा का स्वभाव बदलने मे उन्होंने जो कुछ योग दिया, उसे न स्वीकारना अन्याय होगा।

: ३ :

नई ग़ज़ल की शुरुआत जिन तीन अलग-अलग मिज़ाज के शाइरों से मानी जाती है वे हैं—'यास,' 'शाद' और फ़िराक़। शम्स उर रहमान फ़ारुक़ी के शब्दों में, "यगाना और शाद का असर नई ग़ज़ल पर मुन्फ़ी (नकारात्मक) ज्यादा पड़ा, मसबत (सकारात्मक) कम। नई ग़ज़ल में क्या न हो, का जवाब उनकी शाइरी से मिलता है (क्योंकि उन्होंने यह कर दिखाया कि ग़ज़ल में विषय-विशेष की प्रधानता आवश्यक नहीं और उसमें शब्दों का अन्धानुकरण भी अनावश्यक है) 'फ़िराक़' का जहाँ 'यगाना' और 'शाद' के जहाँ से कहीं ज्यादा

वसीअ (विस्तृत), हुमागीर (सर्वव्यापी) और उनकी तकनीकी सलाहियत इन दोनों से बढ़कर है।" अतः फिराक की शाइरी, जो 'क्या हो' का जवाब देती थी, ज्यादा प्रभावशाली प्रमाणित हुई।

उपर्युक्त बात से यह अर्थ न लगाया जाय कि नई ग़ज़ल इन तीन शाइरों के काव्य-रंग का चर्बा है, बल्कि यह कि अपने शैशव काल में नई ग़ज़ल पर इन शाइरों का अलग-अलग ढंग से प्रभाव पड़ा।

नई ग़ज़ल के शाइर को दो काम करने थे—एक तो उसे 'मुर्दाअरामार' लफ़्ज़ों से ख़ुद को बचाना था, दूसरे उसे उन लफ़्ज़ों की तलाश करनी थी जिसमें नये अनुभव अपनी पूरी चुभन के साथ व्यक्त हो सकें। ये अनुभव इतने नये थे कि जिन्हें पिछले सौ साल का शाइर जानना तो दूर पहचानता भी न था। उसे ऐसे अस्लूब (शैली) की आवश्यकता थी, जो उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति बन सके। पुराने लोगों का व्यक्तित्व उससे भिन्न था इसलिए उनका अस्लूब (लफ़्ज़ों को इस्तेमाल करने का ढंग) भी उससे भिन्न था। अच्छा असलूब वही होता है जो तर्ज़े-इहसास से पैदा हो और उसका साथ दे सके। फिर हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इज़्हार जब विज्दान (काव्य-रसज्ञता) की बराबरी करे तभी अस्लूब वजूद में आता है। अस्लूब और शाइरी, जिनकी बुनियाद ही लफ़्ज़ है, वे चीज़ों के नाम या उनका वर्णन मात्र ही नहीं है अपितु वस्तुओं का काया-कल्प ही शब्द बनता है। इसलिए अगर यह कह दिया जाय कि नई शाइरी की शुरुआत (1955 ई०) नये लफ़्ज़ों की तलाश से हुई तो ग़लत नहीं होगा। क्योंकि नये शाइर के नज़दीक सच्चे अदब की पहचान ही वैयक्तिक अनुभूति और रागात्मक सम्पर्क थी। उसे टॉलस्टाय का यह क़ौल भी याद था कि हमारी सभ्यता में फ़न ऐसे ग़लत मार्ग पर अग्रसर हो चुका है कि जहां न केवल झूठे फ़न को अच्छा समझा जाने लगा है, बल्कि फ़न (कला) की वास्तविक कल्पना ही लुप्त हो गई है। उसे यह भी पता था कि कला की अभिव्यक्ति अन्दरूनी होती है। लेकिन ऐसे लोग भी हैं जो यह भूल गये हैं कि सच्ची कला का अमल क्या है और जो कला से 'कुछ और' चाहते हैं। हमारी सभ्यता में ऐसे लोगों का बाहुल्य है जो सौन्दर्य-बोध के स्थान पर मनोरंजन और सनसनी की खोज में रहते हैं जो उन्हें मिथ्या कला (झूठे फ़न) से प्राप्त होती है। ऐसे लोगों को इस छल से निकालना उसी तरह असम्भव है जैसे रंगों के अंधे को यह समझाना मुश्किल है कि हरा रंग सुर्ख़ नहीं होता। इसलिए नई ग़ज़ल के शाइर ने न तो उन लोगों की परवाह की, जो उसकी नई शब्दावली पर नाक-भौं सिकोड़ते थे न उनकी जो उसकी अलोकप्रियता को स्तरहीनता का पर्याय समझकर उसे अंगुलियों से दिखाते थे और उनकी तरफ़ तो उसे ध्यान देना ही न था जो शाइरी में किसी राजनैतिक उद्देश्य की तलाश में रहते थे।

अतः जिन विद्वानों का यह ख़याल है कि नई गज़ल तरक्कीपसन्दों की गज़ल का विस्तार है, वे भ्रान्ति में हैं।

यहाँ यह स्पष्ट करना भी उपयुक्त लगता है कि ग़ज़ल और नज़्म में साइज़ और ज़बान के अलावा एक और भेद है। गज़ल, जज़्बाती गम्भीरता की अभिव्यक्ति का माध्यम है, जब कि नज़्म वैचारिक गम्भीरता का। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि गज़ल में वैचारिक या नज़्म मे जज़्बाती पक्ष गौण होता है, बल्कि प्रश्न सिर्फ प्रधानता का है। जब तक किसी ग़ज़ल में चिन्तन की राख के नीचे जज़्बात और तीव्र संवेदना की चिंगारी मौजूद न हो तब तक गज़ल, गज़ल नहीं बन सकती। ठीक यही मांग गज़ल पाठकों एवं श्रोताओं से भी करती है अर्थात् गज़ल पढ़ने-सुनने वालों में भी यही गुण विद्यमान होने चाहिये वरना सम्प्रेषण वृत्तात्मक नहीं होगा।

हमारे युग में गज़ल की लोकप्रियता का एक राज़ यह भी है कि हमारे आन्तरिक बिखराव को गज़ल रास आती है और ख़ुद ग़ज़ल का रूप भी बिखराव में ही निखरता है। गज़ल के शाइर की वैयक्तिकता उसके विषय-वस्तु या सीमित संवेदना की वजह से नहीं, बल्कि उसके लहजे से बनती है। अतः गज़ल का विकास उसके लहजे का विकास है।

नई और पुरानी गज़ल का बुनियादी फर्क यह है कि पुरानी गज़ल में जीवन का खंड-खंड चित्र मिलता है, जबकि नई गज़ल में जीवन का समग्र रूप एवं चिन्तन का सम्पूर्ण संसार दिखाई देता है। नई गज़ल पर हम कोई लेबल नहीं लगा सकते न ही उसे किसी दायरे में बंद कर सकते हैं। इसीलिए नई गज़ल को हम पुराने पैमानों—पाठ्यक्रमीय जानकारी या चंद दृष्टिकोणों का अख़बारी इल्म—से समझने में असमर्थ रहते हैं। फिर नई गज़ल तो ख़ुद शाइर, पाठक, श्रोता और आलोचक से जीवन और जीवन के असंख्य अनुभवों में उसके सम्मिलन, विवेक एवं संवेदना का तक़ाज़ा करती है।

नई गज़ल, उस आदमी की अदबी आत्म-कथा है जिसका सम्बन्ध निष्कर्षबन्द विचारधारा से टूट चुका है। जो स्वीकृति और अस्वीकृति का बना-बनाया ढांचा अपने पास नहीं रखता। जो जीवन की हक़ीक़तों को अपने तौर पर दरियाफ़्त करना चाहता है, जिसके सभी सहारे छिन चुके हैं। जिसे भीड़ का हिस्सा इसलिए बनना पड़ता है कि वह एकान्त का बोझ बर्दाश्त नहीं कर सकता। लेकिन उसकी त्रासदी यह है कि बिना एकान्त के वह न तो रचनात्मक रह सकता है और न बन सकता है। एकाकीपन और एकान्त का यह अन्तर और पारस्परिक सम्बन्ध इससे पहले चेतन धरातल पर कभी अनुभूत ही नहीं किया गया था। और न ही जानी हुई चीज़ों को अनजानी हक़ीक़तों की मौजूदगी या भय एवं अनजानी चीज़ों की अनजानी शक्तियों के संत्रास का पहले के शाइर

को बोध हुआ था। भय और संत्रास का यह अनुभूत सम्बन्ध एवं फ़र्क भी इतना स्पष्ट रूप से पहले कभी महसूस ही नही किया जा सका। तो ऐसी व ऐसी ही अनेक बातों की चेतना के बिना वह साहित्य रचा-समझा नहीं जा सकता जिसे आम बोलचाल में नया[1] साहित्य कहा जाता है। इसलिए जब पुराने मूल्यों से नई ग़ज़ल अनुभूत नही की जा सकी तो 'समझदार' लोग बिलबिलाने लगे और अपनी असमर्थता को नई गजल के सर थोपने लगे। ऐसे लोगों के साथ हमें सहानुभूति प्रदर्शित करनी चाहिए।

नई गजल की शोखी से जब पोंगा पंडित बगलें झांकते हैं तो टॉमस मान का यह कथन याद आता है, "अकलाकारों को कलाकार की जो चीज सबसे ज्यादा डराती है वह है उसका चुलबुलापन।" नई गजल मे भावना की कमी की शिकायत करने वाले शायद यह भूल बैठे हैं कि माइरी भावनाओं के पोषण का नाम नही बल्कि भावनाओं को संस्कारित—जिसमें भावना स्वतन्त्र होकर भी उच्छृंखल न हो—करने का नाम है। नई गजल पर यह भी एतराज होता रहा है कि यह अन्तर्मुखी एवं पलायन की कविता है। अब कोई उन्हें कैसे समझाये कि अन्तर्मुखी होना पलायन नही बल्कि दूसरों को अपने निजी जीवन में हस्त-क्षेप करने का अधिकार देना ही है। गजल के कुछ 'मेहरबान' कहते हैं, ग़जल बड़ा (Major) माध्यम नहीं, फिर तीस-बत्तीस साल मे गजल कहाँ पहुँची ? तो साहब फन सियासत का मैदान तो है नही, 'जो फ़ैसला सफलता और असफलता से हो। यहाँ तो चलना ही सब कुछ है, पहुँचना न पहुँचना बराबर है। गजल के माध्यम से मुतालिक इतना कहना ही काफी होगा कि फ़ारसी के हाफिज, उर्फी, निजामी आदि ही नही, उर्दू के गालिब, मोमिन, फ़िराक वगैरह की महानता गजल से ही है। फिर फॉर्म का हुस्न और ख़ूबी तो उसके इस्तेमाल करने वाले से ही उजागर होता है। नई ग़जल की अलोकप्रियता का कारण उसमे यथार्थ का चित्रण न होना या हक़ीकत की कमी समझा जाता है 'कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या'—वास्तविकता में अर्थवत्ता तो पैदा ही उस वक़्त होती है जब वह अफसाना बन जाती है। पता नही, रचना-प्रक्रिया का मूल-बिन्दु ही लोग क्यों नजरअन्दाज कर देते हैं ?

शीन० काफ़० निजाम

कल्लो की गली
जोधपुर (राज०)

1. इन पंक्तियों का लेखक नये और आधुनिक को पर्याय नहीं समझता।

नई ग़ज़ल

अक़ील शादाब

तारकोल की तपती सड़कें और बरहनापाई[1] है
ज़िन्दा रहने की मजबूरी मुझे कहां ले आई है

तू इस घर की बेडशीट है मैं इस घर का बिस्तर हूँ
फिर भी मैं तेरी ख़ल्वत[2] हूँ, तू मेरी तन्हाई[3] है

चुल्लू दो चुल्लू के ग़ोताख़ोरों से ये कौन कहे
नीचे उथला पानी है और ऊपर गहरी खाई है

आसमान के मुंह पर थूक दिया है मैंने तंग आकर
धरती मां की कोख मुझे पैदा करके शर्माई है

मैं अपने बचपन को अब तक भूल नहीं पाया शायद
इक नन्ही-मुन्नी बच्ची ने तेरी याद दिलाई है

कौन करे इन्साफ़ हमारा नावाबस्ता[4] कोई नहीं
जानिब[5] मैं तन्हा[6] हूं तेरी तरफ़ ख़ुदाई है

1. नंगे पांव 2. एकान्त 3. एकाकीपन 4. पक्षपात रहित 5. तरफ 6. अकेला

अक़ील शादाब

बराये-नाम[1] सही कोई मेहरबान तो है
हमारे सर पे भी होने को आस्मान तो है

तिरी फ़राख़दिली[2] को दुआएं देता हूँ
मिरे लबों पे तिरे लम्स[3] का निशान तो है

ये और बात कि वो अब यहाँ नहीं रहता
मगर ये उसका बसाया हुआ मकान तो है

अलावा इसके न कुछ और पर्दा रख मुझसे
फ़सीले-जिस्म[4] मिरे तेरे दर्मियान तो है

बिछड़ के ज़िन्दा नहीं रह सकेंगे हम दोनों
मुझे ये वहम तो है उनको ये गुमान तो है

सरों पे साया-फ़िगन[5] अब्रे-आरज़ू[6] न सही !
हमारे पास सराबों[7] का सायबान[8] तो है

गुले-मुराद[9] नहीं संग-हाए-तिफ़्ल[10] सही !
ग़रीबे-शहर[11] का आख़िर किसी को ध्यान तो है

---

1. नाम को 2. विशाल हृदयता 3. स्पर्श 4. शरीर का परकोटा 5. छाया किया हुआ 6. इच्छा का बादल 7. मृगतृष्णा 8. नाव की पाल 9. इच्छाफल 10. बच्चों के पत्थर 11. विना शहर का

अतीक़ उल्लाह

तुड़े-मुड़े हुए दस्त और पा[1] का नक्शा हूँ
मुक़द्दरों की अदाकारियों का मारा हूँ

कहाँ से लाऊँ मैं हरक्यूलिसी तवानाई[2]
गलीच हाथ में लेता हूँ, तोड़ देता हूँ

सड़क पे भीड़ लगी है तमाशबीनों[3] की
मैं हूँ कि बिजली के तारों में उलझा लटका हूँ

न आदमी है यहाँ और न कोई आदमजाद
गिरा हुवा मैं खुद अपने से इक जज़ीरा[4] हूँ

मैं घर से निकला तो बालिश्तियों[5] ने घेर लिया
ये राज़[6] आज खुला मुझपे कितना लम्बा हूँ

उंडेल दे कोई तेज़ाब से भरी बोतल
सफ़र के कांधे से खस और खार[7] चुनता हूँ

1. हाथ और पाँव 2. ताकत 3. तमाशा देखने वाले 4. द्वीप 5. नौ इंच की नाप वाले 6. भेद 7. घास व कांटे

अतीक़ उल्लाह

समझ ही जायेगा अन्दर का हाल कैसा है
अगर वो देखने वाली निगाह रखता है

बिखरना होगा बुरादे के ढेर को इक दिन
ये किस उम्मीद पे तू, लम्हे[1] गिनता रहता है

समझ रहा था बहुत बेवक़ूफ़ वो मुझको
मैं जिसको अच्छी तरह जानता हूँ वो क्या है

ये खार-खार[2] बदन संग-संग[3] पैराहन[4]
ये आदमी कोई जंगल गिरा के आया है

मुझे भी घुटना है बैनस्सुतुर[5] के अन्दर
उसे भी कांच के शो केस ही में रहना है

ले आज खुद को मैं तेरे हवाले करता हूँ
ये देखना है कि तू, क्या सलूक करता है

1. पल 2. कांटे-कांटे 3. पत्थर-पत्थर 4. परिधान 5. दो पंक्तियों के बीच

अहमद फ़राज़

दोस्त बन कर भी नहीं साथ निभाने वाला
वही अन्दाज है ज़ालिम का ज़माने वाला

अब उसे लोग समझते है गिरफ़्तार मिरा
सख़्त नादिम[1] है मुझे दाम[2] में लाने वाला

क्या कहें कैसे मरासिम[3] थे हमारे उसके
वो जो इक शख़्स है मुंह फेर के जाने वाला

तेरे होते हुए आ जाती थी सारी दुनिया
आज तन्हा[4] हूँ तो कोई नहीं आने वाला

सुब्ह दम छूट गया निकहते-गुल[5] की सूरत
रात को ग़ुन्चः-ए-दिल[6] में सिमट आने वाला

मुन्तज़िर[7] किस का हूँ टूटी हुई दहलीज पे मैं
कौन आयेगा यहाँ, कौन है आने वाला

तुम तकल्लुफ़[8] को भी अख़लाक़[9] समझते हो 'फ़राज़'
दोस्त होता नहीं हर हाथ मिलाने वाला

---

1. लज्जित 2. जाल 3. सम्बन्ध 4. अकेला 5. फूल की सुगन्ध 6. दिल की कली
7. प्रतीक्षित 8. दिखावे 9 शिष्टाचार

अहमद फ़राज़

बुझी नज़र तो करिश्मे[1] भी रोज़ो-शब[2] के गये
कि अब तलक नहीं पलटे हैं लोग कब के गये

करेगा कौन तिरी बेवफ़ाइयों का गिला
यही है रस्मे-ज़माना[3] तो हम भी अब के गये

मगर किसी ने हमें हमसफ़र[4] नहीं जाना
ये और बात कि हम साथ-साथ सबके गये

अब आये हो तो यहाँ क्या है देखने के लिये
ये शहर कब से है वीराँ वो लोग कब के गये

गिरफ़्ता-दिल[5] थे मगर हौसला नहीं हारा
गिरफ़्ता-दिल है मगर हौसले भी अब के गये

तुम अपनी शम्मे-तमन्ना[6] को रो रहे हो 'फ़राज़'
इन आँधियों में तो प्यारे चिराग़ सब के गये

---

1. चमत्कार 2. रात और दिन 3. ज़माने की रस्म 4. सहभागी 5. उदास
6. इच्छा-रूपी दीपक

आज़ाद गुलाटी

आने वाले[1] हादसों[1] के खौफ़[2] से सहमे हुए
लोग फिरते हैं कि जैसे ख्वाब हों टूटे हुए

सुब्ह देखा तो न था कुछ पास उलझन के सिवा
रात हम बैठे रहे किस सोच में डूबे हुए

अपने दुख में डूब कर वुसअ़त[3] मिली कैसी हमें
हैं ज़मीं से आस्मां तक हम ही हम फैले हुए

आज आईने में खुद को देख कर याद आ गया
एक मुद्दत हो गई जिस शख्स को देखे हुए

जिस्म[4] की दीवार गिर जाए तो कुछ अहसास हो
अपने अन्दर हम पड़े हैं किस क़दर सिमटे हुए

. दुर्घटनाओं 2. भय 3. विस्तार 4. शरीर

आज़ाद गुलाटी

सरहदे-कौनो-मकाँ[1] से लामकाँ[2] ले जायेगा
जब ज़मीं छोड़ेगी हम को आस्माँ ले जायेगा

खामशी ही खामशी के कर्ब[3] का इज़हार[4] हो
लफ़्ज़[5] खामोशी से लुत्फ़े-दास्ताँ[6] ले जायेगा

रात से क़ायम है उनके साये की खुशफ़हमियाँ[7]
जब चढ़ा सूरज तो सारे सायबाँ[8] ले जायेगा

हम हिसारे-ज़ात[9] से निकले तो है, पर देखिये
लौट कर खुद से बिखरना अब कहाँ ले जायेगा

दिल की खुशबू से है ज़िन्दा इनके रंगों की धनक[10]
वक़्त सारी ख्वाहिशों की तितलियाँ ले जायेगा

मुंजमिद[11] हो जायेगी जब जिस्म में सब ख्वाहिशें
आग का शोला हमारी दास्ताँ ले जायेगा

---

1. संसार की सीमा 2. ईश्वर 3. दुख 4. व्यक्त 5. शब्द 6. कहानी का आनन्द 6. सुधारणाएँ 8. नाव का पाल 9. व्यक्तित्व का दुर्ग 10. धनुष 11. ठंड से जमना

आबिद अदीब

पहरों ये सोचता हूँ, किनारे खड़ा हुवा
होता जो मैं पवन तो समुन्दर को लांघता

ये इक अलग सवाल है मिलता जवाब क्या
कोई खमोश झील में पत्थर तो फेंकता

कड़वी कसैली बात भी सुनता रहा मगर
साइल[1] था अपना हाथ पसारे खड़ा रहा

धरती हिली तो लोग घरों से निकल पड़े
जैसे उन्हें घरों से कोई वास्ता न था

तख़्ती पे रेगज़ार[2] के क़दमों के शब्द थे
तहरीर[3] साफ़-साफ थी कोई न पढ़ सका

इक लम्बे चौड़े हॉल की मेजें उलट पड़ीं
कुर्सी ने फिर सुना दिया यकतरफ़ा फ़ैसला

---

1. भिक्षुक 2. रेगिस्तान की तख़्ती 3. लिखावट

आबिद अदीब

धरती के हर वरक़[1] पे लिखा जा रहा हूँ मैं
सदियाँ गुजर गई है अधूरी कथा हूँ मैं

हर बार पत्थरों का निशाना बना हूँ मैं
जिस शाख पर उग आया हूँ, तोड़ा गया हूँ मैं

मुँह देखने की कोई भी हिम्मत न कर सका
आईना हाथ में लिये फिरता रहा हूँ मैं

कुछ इस तरह से भीड़ मिरे चारों ओर है
जैसे सड़क के बीच कोई हादसा[3] हूँ मैं

बिछड़े हुए थे, शहर से गाँवो मिला दिये
दोनों तरफ़ को जाता हुवा रास्ता हूँ मैं

झलसा के रख दिया मुझे जख्मों की धूप ने
कुछ इस वज्ह से और भी सँवला गया हूँ मैं

---

1. पृष्ठ 2. टहनी 3. दुर्घटना

इहतिशाम अख़्तर

मेरी पलकों के दरीचों को सजाने के लिये
रात आयेगी चिरागों को जलाने के लिये

ऐसा उजड़ा है ये जंगल कि बगोले भी नहीं
अब हवा आती नही धूल उड़ाने के लिये

ख़ुश्क मिट्टी में ये हल्की-सी नमी है कैसी
कौन आया था निशां छोड़ के जाने के लिये

दिल के वीराने में आकर तो सदा ही खो दी
हम तो आये थे बहुत शोर मचाने के लिये

झूठे अफ़साने बहुत हमने लिखे हैं लेकिन
अब कोई याद नहीं तुमको सताने के लिये

ख़ुश्क दरिया को तलातुम की है ख्वाहिश 'अख़्तर'
रेत पर लिक्खे हुए नाम मिटाने के लिये

इह्तिशाम अख्तर

मुझे हयात[1] के सांचे में ढालने वाले
कहाँ गये वो समुन्दर खंगालने वाले

लुढ़क रहा हूँ ढलानों से प्यार की मैं तो
न आयें राह में, मुझको सँभालने वाले

हमारे शौक़े-फ़रावां[2] ने डँस लिया हमको
कि आस्तीं में थे हम सांप पालने वाले

हवा में फेंक न मुझको समझ के खेल कोई
तुझी को आ के लगूँगा उछालने वाले

ज़रा-सा काम हूँ मैं फिर भी नामुकम्मल[3] हूँ
यहाँ मिले हैं सभी मुझको टालने वाले

कुवाँ हवस का था गहरा कुछ इस क़दर 'अख़्तर'
कि ख़ुद ही गिर गये मुझको निकालने वाले

---
1. जीवन 2. तीव्र रुचि 3. अपूर्ण

डॉ० उन्वान चिश्ती

दर्द औरों का मिरे दर्द से बढ़कर है यहाँ
कैसे इन रिश्तों को तोड़ूँ कि सितमगर[1] है यहाँ

कैसे चेहरों में मुझे छोड़ गया है कोई
दिल तो फिर दिल है, मगर रूह[2] भी पत्थर है यहाँ

दिल भी ख़ाली है बहुत, आँख की झोली की तरह
यूँ तो कहने को हर इक शख़्स सिकन्दर है यहाँ

ज़िन्दा रहना है तो फिर क्यूँ न ख़ुदा बन जाऊँ
है ये वो शहर कि क़ातिल भी पयम्बर है यहाँ

हाय बिस्तर पे बिछी है मिरे जलती हुई रेत
और आँखों में मिरी "ख़्वाब सा पैकर"[3] है यहाँ

कितनी लाशों पे खड़ा है ये तिरा बुत, लेकिन
संगे-बुनियाद[4] मिरी क़ब्र का पत्थर है यहाँ

सिर्फ़ आसूदगी-ए-दिल ही नहीं है, 'उन्वान'
ख़ैर से यूँ तो हर आराम मयस्सर[6] है यहाँ

अत्याचारी 2. आत्मा 3. स्वप्न की प्रतिमा 4. नींव का पत्थर 5. मन को चैन 6. प्राप्य

डॉ० उन्वान चिश्ती

अपनी ही जात से माइल-ब-सफ़र[1] हूँ कब से
जिन्दगी !—तेरे लिये खाक-ब-सर[2] हूँ कब से

'दश्तपैमाई - ए - इहसासे-तमन्ना'[3]—मत पूछ
अपनी ही रूह[4] मे सरगर्मे-सफ़र[5] हूँ कब से

एक ही रंग में सौ रंग नज़र आते हैं
दिल के आईने में 'पाबन्दे-नजर'[6] हूँ कब से

मेरे दुख-सुख को न समझा कोई,—खुद मेरे सिवा
अपने ही घर में ब-अन्दाजे-दिगर[7] हूँ कब से

किसको फुर्सत कि रखे उम्रे-तमन्ना[8] का हिसाब
किसको मालूम कि मैं खाक-ब-सर हूँ कब से

राज़[9] ये कौन बताये मुझे अब तेरे सिवा
शोख दिल,[10] शोख जुबाँ,[11] शोख नज़र हूँ कब से

एक ही शै[12] है हुजूरी[13] हो कि महजूरी[14] हो
घर में मादूम[15] सही, फिर भी मगर हूँ कब से

---

1. यात्रा को तत्पर 2. सर पर धूल लिये 3. जंगल नापने की इच्छा की संवेदना 4. आत्मा 5. यात्रा में मग्न 6. नज़र का पाबन्द 7. दूसरी तरह 8. इच्छा की उम्र 9. भेद 10. चंचल चित्त 11. चंचल भाषा 12. चंचल नज़र 13. सामना 14. विरह 15. अन्तर्धान

ए० डी० राही

एक टूटी हुई जंजीर लिये फिरता है
जोड़ दूं फिर से वह तदबीर लिये फिरता है

अपने हाथों की लकीरों में सजाकर मुझको
शहर की भीड़ में तक़दीर लिये फिरता है

जाविये[1] अपनी निगाहों के बदलने वालो !
वक़्त भी हाथ में शम्शीर[2] लिये फिरता है

काश थोड़ी-सी किसी दिल में जगह मिल जाये
दर्द रूठी हुई तक़दीर लिये फिरता है

मैं तिरे शहर के लोगों से बहुत डरता हूँ
जिसको देखो तिरी तस्वीर लिये फिरता है

दिल की राहों में कोई मोड़ तो आये 'राही'
जहन[3] उलझी हुई तहरीर[4] लिये फिरता है

1. कोण 2. तलवार 3. मस्तिष्क 4. लिखावट

ए० डी० राही

अपने अरमानों की महफ़िल में सजाले मुझको
बेजुबाँ दीप हूँ कोई भी जलाले मुझको

नींद जलती हुई आंखों से चुराने वाले !
तू गुनाहों की तरह दिल में छुपाले मुझको

उम्र भर होश में आ जाये तो मेरा जिम्मा
वो नशा हूँ कोई होटों से लगाले मुझको

बेवफ़ा वक़्त की बेरहम हवाओ ! ठहरो
हो गया गुल तो पुकारेंगे उजाले मुझको

कोई रूठी हुई तक़दीर समझ कर 'राही'
अपने हाथों की लकीरों में सजाले मुझको

कुमार पाशी

ख्वाहिशों ने बुना वो जाल अब के
बच निकलना हुवा मुहाल[1] अब के

डूब जाऊँगा शब[2] के साथ कहीं
देखना तुम मिरा कमाल अब के

मैं नहीं तीरा-खाकदाँ[3] में कहीं
दिल में आया ये क्या ख़याल अब के

यादे-माज़ी[4] न ख्वाबे-मुस्तक़बिल[5]
यूँ हुवा है मिरा ज़वाल[6] अब के

छूटे जाते हैं हाथ से पतवार
मुझको मौजे-हवा[7] सँभाल अब के

ठिन 2. रात 3. अँधेरा कूड़ा घर 4. अतीत की याद 5. भविष्य का
प्न 6. पतन 7. हवा की लहर

कुमार पाशी

भूले बिसरे हुए ग़म याद दिलाती है हवा
जाने किन दूर की गलियों से बुलाती है हवा

अक्सर ऐसा भी हुवा है कि मुझे शाम ढले
अजनबी शहर का इक ख्वाब दिखाती है हवा

उठ गया कौन भरे घर का उजाला ले कर
सर पटकती है, बहुत शोर मचाती है हवा

क्यूं हुई है ये मिरी जान की प्यासी आख़िर
क्यूं मिरे घर के चिराग़ों को बुझाती है हवा

छोड़ आती है मुझे दूर वियाबानों[1] में
जब भटक जाऊं तो फिर राह दिखाती है हवा

शाम होते ही वो सो जाते है छत पर जा कर
और फिर रात गये उनको जगाती है हवा

आज फिर गुजरेंगे जैसे वो इधर से 'पाशी'
यूं मिरे घर के दरो-बाम[2] सजाती है हवा

1. जंगलों 2. दरवाजा और छत

ख़लील तनवीर

हसद[1] की आग थी और दाग-दाग[2] सीना था
दिलों से घुल न सका वो गुवार कीना[3] था

ज़रा-सी ठेस लगी थी कि चूर-चूर हुवा
तिरे ख़याल का पैकर[4] भी आबगीना[5] था

रवाँ[6] थी कोई तलब-सी[7] लहू के दरिया में
कि मौज-मौज[8] भंवर उम्र का सफ़ीना[9] था

वो जानता था मगर फिर भी बेख़बर ही रहा
अजीब तौर था उसका अजब क़रीना[10] था

बहुत करीब से गुज़रे मगर ख़बर न हुई
कि उजड़े शहर की दीवार में दफ़ीना[11] था

---

1. द्वेष 2. कलंकित 3. वह शत्रुता जो दिल में रहे 4. प्रतिमा 5. पतले कांच का प्याला 6. बहना 7. चाह 8. लहर-लहर 9. कश्ती 10. शिष्टता 11. ख़ज़ाना

खलील तनवीर

दूर तक एक सियाही[1] का भँवर भ्रायेगा
खुद में उतरोगे तो ऐसा भी सफ़र भ्रायेगा

भ्रांख जो देखेगी दिल उसको नहीं मानेगा
दिल जो देखेगा वो भ्रांखों में उभर भ्रायेगा

अपने इहसास का मंज़र ही बदल जायेगा
भ्रांख झपकेगी तो कुछ भ्रौर नज़र भ्रायेगा

भ्रौर चलना है तो बेखौफ़ो-खतर[2] निकलो भी
न किसी अब्र[3] का साया न शजर[4] भ्रायेगा

खत्म हो जायेगी जब जश्ने-मुलाक़ात[5] की रात
याद बुझते हुए चेहरों का नगर भ्रायेगा

---

1. कालिमा 2. निडर 3. बादल 4. पेड़ 5. मिलन का उत्सव

ख़ुश्तर मकरानवी

जब कभी इन्सान की अक़्लें घटा दी जायेंगी
ज़िन्दा रहने के लिये, उम्रें बढ़ा दी जायेंगी

आदमी बेज़ार हो जायेगा अपनी ज़ीस्त से
इस ज़मीं पर और ही शक्लें बसा दी जायेंगी

तुरबतें[1] तरसा करेंगी फ़ातिहा के वास्ते
चादरें बेबास फूलों की चढ़ा दी जायेंगी

बेज़ुबां हो जायेंगे काले गुलाबों के बदन
आपकी सांसें किताबों में समा दी जायेंगी

मेरी 'ख़ुश्तर' ज़ीस्त की होगी अगर तश्ख़ीस[2] तो
चन्द ख़्वाबों की ख़ताएँ भी बता दी जायेंगी

1. समाधियां 2. जांच

ग़ुलाम मुर्तुज़ा 'राही'

हाथ-पाँव में कैसा कस-बल था जब
मेरे काँधे पर मेरा हल था जब

किन कदमों की चाप मिला करती थी
सारा मंजर[1] आँख से ओझल था जब

बौछारें कमरों में दर आती थीं
सीधा-सादा पानी चंचल था जब

एक ज़माना पत्थर का गुज़रा है
मीठा-मीठा तेशे[2] का फल था जब

धरती जीभ निकाले हाँफ रही थी
आसमान पर गहरा बादल था जब

शाम-सवेरे क्या-क्या गुल खिलते थे
हरा-भरा नद्दी का आँचल था जब

---

1. दृश्य 2. कुदाल

ग़ुलाम मुर्तुज़ा 'राही'

छिप के कारोबार करना चाहता है
घर को वो बाज़ार करना चाहता है

आस्मानों के तले रहता है लेकिन
बोझ से इन्कार करना चाहता है

चाहता है वो कि दरिया सूख जाये
रेत का ब्योपार करना चाहता है

खींचता रहता है काग़ज़ पर लकीरें
जाने क्या तैयार करना चाहता है

पीठ दिखलाने का मतलब है कि दुश्मन
घूम कर इक वार करना चाहता है

दूर की कौड़ी उसे लानी है शायद
सरहदों को पार करना चाहता है

नन्दकिशोर बोड़ा

प्रांतों में फिर उसी भेड़िये की वो धँसता जायेगा
हर बर्फीली रात में कुहरा 'माँ' सुन कर गहरायेगा

सहमा सिमटा शोर-शराबा फिर बिस्तर तक आयेगा
जिन्दाँ में जंजीर हिलेगी सन्नाटा बढ़ जायेगा

बरसों पहले कोई बच्चा इक खंदक़ में लुढ़का था
सदियों तक इक सहमा पंजा सोते में चौंकायेगा

सदियों की दूरी से फिर वो बेबस होकर ताका है
कौन मुझे पत्थर में गढ़कर खंदक़ में लुढ़कायेगा

लंबे सायों ने इक जबड़ा रोशनदान में टाँगा है
बिल्लौरी लम्हे में वो फिर बोटी बनता जायेगा

चलते-फिरते रिश्ते आखिर पपड़ी बन कर उखड़ गये
दीवारों ने थाम लिया है जिन्दा तो रह जायेगा

दूर बहुत है पीपल लेकिन जंगल में है पेड़ वही
पगडंडी फिर उलट रही है कब तक बचने पायेगा

नन्दकिशोर बोहरा

कितना भोला, कितना खुशदिल, कितना अच्छा गाता है
रोज़ वही न इसी पेड़ पर ताज़ा आंत सुखाता है

सहम के पल भर ताक लिया था मैंने ठहरी आँखों में
आज भी मुझको देख के हर बच्चा बेबस घिघियाता है

इन्हीं खदानों में एक काली चीख भटकती है अक्सर
इस बच्चे के चेहरे पर भी दाग़ उभरता आता है

शाखों पर भैरव रक्सां हैं, बेबस बन्दर टपकेंगे
आंतों में उलझा बकरी का बच्चा पर मिमियाता है

सूरज भी अब बूढ़ा हो कर आता होगा कभी-कभी
तहखानों में पल भर चकमक मेरी सुब्ह बनाता है

टूटा होगा ताज़ा पत्ता जंगल में फिर आज कहीं
एक कबूतर खिड़की तक आता है फिर मुड़ जाता है

नासिर काज़मी

कुछ यादगारे-शहरे-सितमगर[1] ही ले चलें
आये हैं इस गली में तो पत्थर ही ले चलें

यूं किस तरह कटेगा कड़ी धूप का सफ़र
सर पर खयाले-यार[2] की चादर ही ले चलें

रंजे-सफ़र[3] की कोई निशानी तो पास हो
थोड़ी-सी खाके-कूचः-ए-दिलबर[4] ही ले चलें

ये कह के छेड़ती है हमें दिलगिरफ़्तगी[5]
घबरा गये हैं आप तो बाहर ही ले चलें

इस शहरे-बेचिराग़[6] में जायेगी तू कहाँ
आ, ऐ शबे-फ़िराक़ ! तुझे घर ही ले चलें

---

1. अत्याचारी के शहर की यादगार 2. दोस्त की याद 3. यात्रा का कष्ट
4. प्रेयसी की गली की धूल 5. उदासी 6. बिना दीप का नगर

नासिर काज़मी

दयारे-दिल[1] की रात में चिराग़ सा जला गया
मिला नहीं तो क्या हुवा वो शक्ल तो दिखा गया

जुदाइयों के जख़्म दर्दे-ज़िन्दगी[2] ने भर दिये
उसे भी नींद आ गई, मुझे भी सब्र[3] आ गया

वो दोस्ती तो ख़ैर अब नसीबे-दुश्मनां[4] हुई
वो छोटी-छोटी रंजिशों[5] का लुत्फ़[6] भी चला गया

पुकारती है फ़ुर्सतें[7] कहां गई सुहबतें[8]
जमीं निगल गई उन्हें कि आस्मान खा गया

ये सुब्ह की सफ़ेदियां ये दोपहर जर्दियां[9]
मैं आईने मे ढूंढ़ता हूं मैं कहां चला गया

ज़ियादा कुछ नहीं तो कोई ताजा दर्द ही मिले
मैं एक ही तरह की ज़िन्दगी से तंग आ गया

---

1. दिल की दुनिया 2. जीवन का दर्द 3. धैर्य 4. वह चीज जो अपने लिए न हो और दुश्मनों के लिए हो 5. मनमुटाव 6. आनन्द 7. समय, अवकाश 8. गोष्ठी 9. पीलापन

निदा फ़ाज़ली

दुख में नीर बहा देते थे, सुख में हँसने लगते थे
सीधे-सादे लोग थे लेकिन कितने अच्छे लगते थे

नफ़रत चढती आँधी जैसी, प्यार उबलते चश्मों-सा
बीवी हो या संगी-साथी, सारे अपने लगते थे

बहते पानी दुख-सुख बाँटें, पेड़ बड़े-बूढ़ों जैसे
बच्चों की आहट सुनते ही, खेत लहकने लगते थे

नदिया, परबत, चाँद, निगाहें, माला एक कई दाने
छोटे-छोटे से आँगन भी, कोसों फैले लगते थे

निदा फ़ाज़ली

ठहरे जो कहीं आंख तमाशा नज़र आये
सूरज में धुआं, चांद में सहरा नज़र आये

रफ़्तार[1] से ताबिन्दा[2] उम्मीदों के झरोके
ठहरूँ, तो हर इक सिम्त[3] अंधेरा नज़र आये

सांचों में ढले क़हक़हे, सोची हुई बातें
हर शख्स के कांधों पे जनाज़ा नज़र आये

हर राहगुज़र रास्ता भूला हुआ बालक
हर हाथ में मिट्टी का खिलौना नज़र आये

खोई है अभी 'मैं' के धुंधलके में निगाहें
हट जाये ये दीवार तो दुनिया नज़र आये

जिससे भी मिलें झुक के मिलें, हँस के हों रुख़सत[4]
अखलाक़[5] भी इस शहर में पेशा नज़र आये

ति 2. रौशन 3. दिशा 4. विदा 5. शिष्टाचार

प्रकाश फ़िक्री

न हो कुछ मगर काश इतना तो हो
ये रस्ता तिरी सिम्त जाता तो हो

डूबो देंगे खुद को बड़े शौक़ से
समुन्दर भी आँखों-सा गहरा तो हो

कहाँ साथ देता है कोई सदा
मगर साथ देने का वादा तो हो

तुझे शाखे-संदल[1] की कैसे कहें
कोई साँप तुझसे भी लिपटा तो हो

परिन्दों के गीतों को तरसेंगे हम
फ़िज़ा की खमोशी में नोहा[2] तो हो

बसा लेंगे 'फ़िक्री' नये ख्वाब फिर
उजड़ने का दिल के तमाशा तो हो

1. चंदन 2. रुदन

प्रकाश फ़िक्री

करें भी याद कि एक ख़्वाब हमने देखा था
रूतों के रंग में डूबा जहान सारा था

लचकती शाख़ों के हाथों से फूल चुन-चुन कर
दहकती धूप से इनको बचा के रखा था

हरेक शब थी अमीरों की आग से रोशन
सुलगता दिल भी महकती हवा का झोंका था

हमें भी कब यह ख़बर थी कि यूँ भी होता है
मिज़ाजे-शीशा[1] से तू भी कहाँ शनासा[2] था

उदास आँखों से तकते थे रास्ते सबको
उजाड़ पेड़ों पे चिड़ियों का शोर नोहा था

किसी सदा का बुलावा सुनाई क्या देता
हमारे गिर्द ख़मोशी ने जाल घेरा था

भटकते साये थे सायों की खोज में 'फ़िक्री'
दरीचे[3] वा[4] थे घरों में मगर अँधेरा था

1. काँच का स्वभाव 2. परिचित 3.खिड़की 4. खुला

बशीर बद्र

हम बिखरते हैं तीरगी[1] की तरह
दर्द बढ़ता है रोशनी की तरह

हम खुदा बन के आयेंगे वर्ना
हम से मिल जाओ आदमी की तरह

जब कभी बादलों में घिरता है
चाँद लगता है आदमी की तरह

सब नजर का फ़रेब है वर्ना
कोई होता नहीं किसी की तरह

खूबसूरत, उदास, खौफ़जदा[2]
वो भी है बीसवीं सदी की तरह

1. अँधेरे 2. भयभीत

बशीर बद्र

क़दम से आगे-आगे चल रही है
मुसाफ़िर को गली पहचानती है

कभी इक रात इन आँखों में देखो
कि हसरत किस तरह दम तोड़ती है

अगर दिल में ख़ुलूसे-आशिक़ी[1] हो
गुनाहों में बड़ी पाकीज़गी[2] है

न जाने किस तरफ़ से आ रही है
हवाओं में बड़ी अफ़सुर्दगी[3] है

सहर[4] के क़ाफ़िले ये जानते हैं
अभी इक रात की मंज़िल पड़ी है

ये कोई बात कहना चाहते हैं
सितारों के लबों[5] पर कपकपी है

1. प्रेम की निष्कपटता 2. पवित्रता 3. उदासी 4. प्रभात 5. होंटों

बानी

कुछ न कुछ साथ अपने ये अंधा सफ़र ले जायेगा
पांव में ज़ंजीर डालूंगा तो सर ले जायेगा

अन्दर-अन्दर यक व यक[1] उट्ठेगा तूफ़ान-नफ़ी[2]
सब निशाते-नफ़अ[3], सब रंजे-जरर[4] ले जायेगा

एक पीला रंग बाकी रह गया आंख में
डूबता मज़र उसे दामन मे भर ले जायेगा

घूमता है शहर के सबसे हसी बाजार में
इक अजीय्यतनाक[5] महरूमी[6] वो घर ले जायेगा

मुंतज़िर[7] इक लम्ह:-ए-सादा-उम्मीदी[8] का हूँ मैं
जाने कब आयेगा, सीने के भँवर ले जायेगा

अब न लायेगा कोई उसका पता मेरे लिये
और वहां कोई न अब मेरी ख़बर ले जायेगा

इस क़दर ख़ाली हुवा बैठा हूँ अपनी ज़ात[9] में
कोई झोंका आयेगा ! जाने किधर ले जायेगा

---

1. एकाएक 2. नहीं का तूफ़ान 3. लाभ का आनन्द 4. क्षय 5. कष्टदायक 6. वंचना 7. प्रतीक्षित 8. एक सीधे-सादे पल की आशा 9. व्यक्तित्व

बानी

मस्त उड़ते परिन्दों को आवाज़ मत दो कि डर जायेंगे
ध्यान की आन में सारे औराक़े-मंज़र[1] बिखर जायेंगे

शाम : चांदी-सी इक याद पलकों पे रखकर, चली जायेगी
और हम रोशनी-रोशनी अपने अन्दर उतर जायेंगे

कौन है, किस जगह है कि टूटा है जिनके सफ़र का नशा
एक डूबी-सी आवाज़ आती है पैहम[2] कि घर जायेंगे

ये सितारे तुम्हें अपनी जानिब[3] से शायद न कुछ दे सकें
हम मगर रास्तों में रखे सब चिराग़ों को भर जायेंगे

हमने समझा था मौसम की बेरहमियों को भी ऐसा कहाँ
इस तरह बर्फ़ गिरती रहेगी कि दरिया ठहर जायेंगे

आज आया है इक उम्र की फ़ुरक़तों[4] में अजब ध्यान-सा
यूँ फ़रामोशियाँ[5] काम कर जायेंगी, ज़ख़्म भर जायेंगे

---

1. दृश्य के पृष्ठ 2. निरन्तर 3. तरफ़ 4. जुदाइयों 5. विस्मृत

मख़्मूर सईदी

उफ़क़ पर शाम का पहला सितारा मुस्कराता है
मिरे अन्दर किसी ग़म का धुंदलका बढ़ता जाता है

गुज़रती जा रही है उम्र रोज़ो शब[1] की राहों से
हयातो-मौत[2] में जो फ़ासला था घटता जाता है

कभी यूँ था हर आने वाले पल की राह देखी थी
अब ऐसा है, कि हर गुज़रा हुआ पल याद आता है

ख़याल अलबम उठा लाया कहाँ से, मेरे माज़ी का[3]
तसव्वुर[4] ये मुझे कब-कब की तस्वीरें दिखाता है

मिरी अफ़सुर्दगी[5] से ख़्वाहिशें क्यूँ छेड़ करती हैं
ख़यालों के बदन को हाथ किस का गुदगुदाता है

हवा पेड़ों की शाख़ों से गुज़रती है तो लगता है
किसी का रेशमी मलबूस[6] जैसे सरसराता है

ख़मोशी बन गई 'मख़्मूर' यादों की ज़ुबां गोया
शबे-ग़म[7] का ये सन्नाटा तो अफ़साने सुनाता है

---

1. रात-दिन 2. जीवन और मृत्यु 3. अतीत 4. विचार 5. उदा
6. लिबास 7. दुख की रात

मख्मूर सईदी

बिखरते टूटते लम्हों[1] को अपना हमसफ़र जाना
कि था इस राह में आख़िर हमें ख़ुद भी बिखर जाना

सरे-दोशे-हवा[2] इक अब्रपारे[3] की तरह हम हैं
किसी झोंके से पूछेंगे कि है हमको किधर जाना

पसे-ज़ुल्मत[4] कोई सूरज हमारा मुन्तज़िर होगा
इसी इक वहम को हमने चिरागे-रह गुज़र[5] जाना

मिरे जलते हुये घर की निशानी बस यही होगी
जहाँ इस शहर में कुछ रोशनी देखो, ठहर जाना

सुहाने मौसमों की याद! सिखलाया तुझे किसने
उफ़क़[6] पर दीदः-ओ-दिल[7] के धनक[8] बनकर बिखर जाना

हिसारे-ज़ब्त[9] में रहकर मआले-हसरते-दिल[10] क्या ?
किसी क़ैदी परिन्दे की तरह घुट-घुट के मर जाना

दयारे-ख़मोशी[11] से कोई रह-रह कर बुलाता है
हमें 'मख्मूर' इक दिन है इसी आवाज़ पर जाना

---

1. पलों 2. हवा के कंधे पर 3. बादल के टुकड़े 4. अंधेरे के पीछे 5. रास्ते का दीपक 6. क्षितिज 7. दिल और आँख 8. धनुष 9. सहनशीलता की परिधि 10. मन की आकांक्षा 11. चुप्पी का देश

मज़हर इमाम

तू है गर मुझसे खफ़ा[1], खुद से खफ़ा हूँ मैं भी
मुझको पहचान ! कि तेरी ही अदा हूँ मैं भी

एक तुझसे ही नहीं फ़स्ले-तमन्ना[2] शादाब[3]
वही मौसम हूँ, वही आबो-हवा[4] हूँ मै भी

सब्त[5] हूँ दश्ते-खमोशी[6] पे हिना की सूरत[7]
नाशनीदा[8] ही सही, तेरा कहा हूँ, मैं भी

चाँद बन कर तेरे आँगन में उतर ही जाऊँ
रात के पिछले पहर माँग, दुआ हूँ मैं भी

यूँ न मुर्झा, कि मुझे खुद पे भरोसा न रहे
पिछले मौसम में, तिरे साथ खिला हूँ मैं भी

जाने किस राह चलूँ, कौन से रुख मुड़जाऊँ
मुझ से मत मिल, कि जमाने की हवा हूँ, मैं भी

1. रुष्ट 2. कामना की ऋतु 3. हरी 4. जलवायु 5. अंकित 6. चुप्पी का जंगल 7. मेहँदी की तरह 8. अनसुना

मज़हर इमाम

जब सर पे आ पड़ेगी तो ग़ैरत[1] भी आयेगी
दस्तार[2] गिर गई तो शराफ़त भी आयेगी

तेशा[3] उठा लिया है तो अब जो भी ज़द[4] में आयें
इस रास्ते में तेरी इमारत भी आयेगी

ऐसा भी क्या कि कोई ख़रीदार ही न हो
जब बेचने चलेंगे तो क़ीमत भी आयेगी

देखा है एक शख़्स दरीचे[5] के आस-पास
उस घर से अब हवा-ए-नफ़ासत[6] भी आयेगी

होंटों की नर्म-गर्म दवा पी के देखिये
बुझते हुए बदन में हरारत भी आयेगी

होता है बार-बार रवाबित[7] का इम्तिहाँ
इस आईने में गर्दे-कदूरत[8] भी आयेगी

ये दौरे-इख़्तलाफ़[9] बहुत देर पा नहीं
मेरी तरफ़ वो चश्मे-नदामत[10] भी आयेगी

---

1. लज्जा, स्वाभिमान 2. पगड़ी 3. कुदाल 4. चपेट 5. खिड़की 6. हवा की स्वच्छता 7. (रब्त का बहुवचन) सम्बन्ध 8. द्वेष की धूल 9. विरोध का युग 10. लज्जित नयन

माजिद उल बाक़री

लफ़्ज़ को चादर हटी ग्रोराक़[1] नंगे हो गये
कोरे काग़ज के बदन पर रेंगते है दायरे

ग्रपने बचपन की मुझे तस्वीर देकर हँस पड़ी
मैंने पूछा था बता ग्रब क़ुर्बतों[2] के फ़ासले

कितना सच है एक क़ब्रिस्तान में चिड़ियों का शोर
मुर्दा-तहरीरों[3] से बेहतर हैं ये ज़िंदा हाशिये

सुब्ह होते ही निकल जायेंगे जंगल की तरफ़
रात भर बैठे रहेंगे मेरे घर मे रास्ते

ग्रापके हमराह सब कुछ ले चला हूँ ग्रपने साथ
मेरे बच्चों का जो हक़ है वो तो देते जाइये

एक मरकज़[4] पर सिमटता फैलता हूँ रात-दिन
जिस क़दर आँखें है 'माजिद' उस क़दर है ज़ाविये[5]

---

1. पन्ने 2. सामीप्य 3 मुर्दा लेख्य 4. केन्द्र 5. कोण

माजिद उल बाक़री

मत बुलन्दी से बुला झील के उस पार मुझे
उल्टे पानी में नजर आते हैं कुहसार[1] मुझे

साये बढते है तो बेखौफ़[2] खड़ा रहता हूँ
अपने पैरों में नजर आती है दस्तार[3] मुझे

जलते सहरा में दरो-बाम[4] बना जाती है
देखती रहती है चुपचाप जो दीवार मुझे

तितलियाँ कोह पे यलग़ार[5] किया करती है
लफ़्ज़[6] जब दे के चले जाते है तलवार मुझे

कोई भी शख्स न था राहनुमाई[7] को मिरी
बस किताबों का मिला राह मे अंबार मुझे

कितने फूलों की महक जज्ब[8] हुई थी इसमें
गीले पत्थर से बुलाती रही महकार[9] मुझे

ख्वाब से चौंका हूँ सदियों का सफ़र तै करके
रोशनी ठहरी हुई लगती है रफ़्तार मुझे

आँख झपकी थी कि दुनिया ही नई थी 'माजिद'
फ़ासले टूट के करते हैं खबरदार मुझे

---

1. पहाड़ 2. निडर 3. पगडी 4. दरवाज़े और छत 5. आक्रमण 6. शब्द
7. पथ-प्रदर्शन 8. समाई 9. सुगन्ध

मानसिंह 'ख़याल'

जिनकी गिनती थी मेज़बानों में
उनकी गिनती है मेहमानों में

ज़िन्दगी का भरम-सा होता है
रोशनी देख कर मकानों में

मर गये ठंड से सभी ताइर
कैसी गर्मी थी ग्राशियानों में

बन्द लोगों ने कर दिया जीना
जैसे हड़ताल कारखानों में

हमको ताज़ा हवा कहीं न मिली
पूछ ग्राये सभी दुकानों में

फिर थिरकने लगे हयात के पाँव
एक ग्रावाज़ ग्राई कानों में

ग्रपनी खिड़की से देखता हूँ 'ख़याल'
रेंगते रास्ते ढलानों में

मानसिंह 'ख़याल'

यूँ भी हम अपनी तमन्ना से कई बार मिले
जैसे हँसता हुआ बीमार से बीमार मिले

लोग कांधों पे उसूलों को लिये फिरते हैं
ढूंढ़ते है कोई अच्छा-सा ख़रीदार मिले

सोये अँगड़ाइयां लेते हुए पर्दे आख़िर
ख़्वाबगाहों[1] में मगर आईने बेदार मिले

इसकी ता'बीर[2] बताओ कि हमें ख़्वाबों में
ख़ूं नहाये हुए जैतून के अशजार[3] मिले

हमने आईना उठाया तो कोई याद आया
उसमें माज़ी[4] के कई लम्हे गिरफ़्तार मिले

जिस तरह खेलते हों आंख मिचोली बच्चे
लम्हें बीते हुए हमको पसे-दीवार[5] मिले

आशियां जलने लगे जिस्म की गर्मी से 'ख़याल'
ज़िन्दा रहने में हमें मौत के आसार मिले

---

1. शयनागृहों 2. स्वप्न-फल 3. पेड़ 4. भूतकाल 5. दीवार के पीछे

मुम्ताज़ शकेब

ग़म की जो कड़ी धूप में रहगीर[1] मिला था
सूखा हुआ इक पेड़-सा राहों में पड़ा था

इक जुर्मे-तमन्ना[2] की सज़ा काट रहा था
दुनिया की ज़बानें थीं वो ख़ामोश खड़ा था

फूलों का तसव्वुर था महज़[3] शाख़े-गुमाँ[4] पर
काँटों का लबादा[5] मेरी आँखों से छिपा था

शोरीदासरो[6]! आज ये क्या हो गया तुमको
पहले तो कभी दार[7] पर भी मुंह न खुला था

खटके से 'शकेब' आज भी हर साँस के दिल में
काँटा-सा जो इहसास के सीने में चुभा था

1. पथिक 2. इच्छा का अपराध 3. केवल 4. भ्रम की टहनी पर 5. जाड़ों में पहनने का रूईदार चुगा 6. दीवानो 7. फांसी

मुम्ताज़ शकेब

आँखों के दश्त[1] में यूँ बसर की गई है रात
काँटे-सी जैसे दिल में चुभो दी गई है रात

बैठे थे जिस दरख़्त के साये में उन दिनों
उसके ख़याल का भी लहू पी गई है रात

आवाज़ दी तो चुप यूँ उजालों ने साध ली
जैसे ज़बाने-सुब्ह[2] को भी सी गई है रात

पूछो ज़रा सुलगते हुए ज़र्द चाँद से
कितने हसीन चेहरों का ख़ूँ पी गई है रात

कितनी गिराँ[3] पड़ी है उन्हें क्या ख़बर 'शकेब'
ख़्वाबों की जिन्स[4] दे के ख़रीदी गई है रात

1. जंगल 2. प्रभात की जिह्वा 3. भारी 4. वस्तु

मुसव्विर सब्ज़वारी

बुला के ले गई जो पानियों[1] को रात में भी
वही गिरफ़्त थी ज़ंजीरे-हादिसात[2] में भी

उदासियों के थे रिश्ते तुम्हारे साथ में भी
पड़े न दिल में भँवर चौदहवीं की रात में भी

अब उससे तर्के-तअ़ल्लुक़[3] पे आबदीदा[4] हो क्यूँ
वो ग़ैर ही था हुजूमे-तअ़ल्लुक़ात[5] में भी

ये कौन किसका यहाँ इन्तिज़ार कर के गया
हैं चन्द पुर्ज़े अभी तक हवा के हात में भी

तुम अपनी आँख के रेगे-रवाँ[6] में जज़्ब[7] हुए
मैं डूबता ही रहा साहिले-निजात[8] में भी

अभी गिरा है 'मुसव्विर' जो शाख़ से पत्ता
सँभालता था ये मुझको बिखरती ज़ात में भी

---

1. पानी का बहुवचन 2. दुर्घटनाओं की ज़ंजीर 3. संबंध विच्छेद 4. सजल नेत्र 5. संबंधों की भीड़ 6. बहती हुई रेत 7. आत्मसात 8. छुटकारे किनारे

मुसव्विर सब्ज़वारी

किस लम्स[1] से पिघलता कि सदियों का पाप था
अपना बदन तो एक रिशी[2] का शराप[3] था

तलवे तमाम चाट गया रास्तों का दर्द
पाँवों में जाने कौन से सहरा का नाप था

आवाज़ अब उसकी दूर से ही सुन सकोगे तुम
वो जंगलों में बिखरी हुई कोई चाप था

इक ख़ौफ़ में घिरे रहे दो जिस्म रात भर
जिस्मों का सारा फ़ासला अन्दर का पाप था

दफ़्न अब नदी के पार है वो ज़िन्दा क़हक़हा
जो रतजगों के गाँवों में ढोलक की थाप था

घर से मैं ख़्वाहिशों के भँवर काटता चला
लौटा तो एक लाश का क़ातिल मैं आप था

किस नक़्श को भूलाये 'मुसव्विर' ये लौहे-चश्म[4]
हर चेहरा इस नवाह[5] का पत्थर की चाप था

1. स्पर्श 2. ऋषि 3. शाप 4. आँख की तख़्ती 5. चारों ओर का क्षेत्र

रऊफ़ सैर

मंज़र[1] हूँ मैं, घिरा हुआ पसमंज़रों[2] में हूँ
मैं कब से बुत बना हुवा इन पत्थरों में हूँ

जो बेकिताब[3] है उन्ही पैग़म्बरों में हूँ
यानी अभी दिलों में नही हूँ सरों में हूँ

मैं बदसरिश्त[4] कब से तमाशागरों[5] में हूँ
इक हसरते-दुआ[6] की तरह मिम्बरों[7] में हूँ

ये और बात है कि मिरा घर नही कोई
अब तुम से क्या कहूँ कि मैं कितने घरों में हूँ

इक दायरे से छूटूँ तो इक और दायरा
ऐ गर्दिशे-हयात[8] ! ये किन महवरों में हूँ

1. दृश्य 2. नेपथ्य 3. बिना किताब का (ईसा मसीह के साथ बाइबल एवं हज़रत मुहम्मद के द्वारा कुरआन शरीफ़ दुनिया में आया) 4. अभागा 5. तमाशा करने वालों 6. प्रार्थना की इच्छा 7. मजिस्द की वह चौकी जिस पर खड़े होकर या बैठ कर उपदेश दिया जाता है 8. जीवन-चक्र

रऊफ़ ख़ैर

जो शहरे-दिल[1] को सहरा कर गया है
वही इक हर्फ़[2] अब तक गूँजता है

असीरे-दर्द[3] इक तुम ही नहीं हो
हमारे साथ भी धोका हुवा है

बहुत ऊँची सही दीवार घर की
घरों का हाल चेहरों पर लिखा है

तरसता है बहुत काग़ज़ लहू को
ग़मे-जानाँ[4] तुझे क्या हो गया है

अँधेरों में भँवर से पड़ रहे हैं
कोई रह-रह के हँसता जा रहा है

मैं यूँ तो 'ख़ैर' आईना-सिफ़त[5] हूँ
मुझे उसका चिढ़ाना भा गया है

---

1. दिल का नगर 2. अक्षर 3. दर्द का बंदी 4. प्रेमिका का ग़म 5. आईने के से स्वभाव वाला

रशीद अफ़रोज़

ग़ुबारे-राह[1] को लश्कर[2] समझ रहा था मैं
हवा का लम्स[3] था ख़ंजर समझ रहा था मैं

हसद[4], ग़रूर[5], रफ़ाक़त[6] की आग थी उन में
जिन्हें ख़ुलूस[7] का पैकर समझ रहा था मैं

मुझे ख़रीदने वाला कोई न था लेकिन
ख़ुद अपनी ज़ात को गौहर[8] समझ रहा था मैं

सफ़र में था तो मुहब्बत का पेड़ सूख गया
ये चन्द अश्क समुन्दर समझ रहा था मैं

जो मेरी रूह में ज़िन्दा था आरज़ू बन कर
उसे भी राह का पत्थर समझ रहा था मैं

1. राह की उठती धूल 2. सेना 3. स्पर्श 4. द्वेष 5. अभिमान 6. मित्रता
7. प्रेम 8. मोती

रशीद अफ़रोज़

क़रीब दिल के जो आहट सुनाई देती है
कभी-कभी तो ख़ामोशी भी जान लेती है

नफ़स[1] के शोर में वो शै' भी खो न जाये कहीं
बड़ी ख़ुशी से जो दुख दर्द बाँट लेती है

लहू पिलाया था जिस सरज़मीन[2] को मैंने
उसी की कोख से उजड़ी हुई ये खेती है

तिरा वजूद समुन्दर है नीले पानी का
मिरा वजूद किनारे की ज़र्द रेती है

मैं दिन की धूप में ख़ुद को समेट लेता हूँ
अँधेरी रात मुझे फिर बिखेर देती है

---

1. साँस 2. धरती

रशीद अफ़रोज़

ग़ुबारे-राह[1] को लश्कर[2] समझ रहा था मैं
हवा का लम्स[3] था खंजर समझ रहा था मैं

हसद[4], ग़रूर[5], रफ़ाक़त[6] की आग थी उन में
जिन्हें ख़ुलूस[7] का पैकर समझ रहा था मैं

मुझे ख़रीदने वाला कोई न था लेकिन
ख़ुद अपनी ज़ात को गोहर[8] समझ रहा था मैं

सफ़र में था तो मुहब्बत का पेड़ सूख गया
ये चन्द अश्क समुन्दर समझ रहा था मैं

जो मेरी रूह में ज़िन्दा था आरज़ू बन कर
उसे भी राह का पत्थर समझ रहा था मैं

---

1. राह की उठती धूल 2. सेना 3. स्पर्श 4. द्वेष 5. अभिमान 6. मित्रता 7. प्रेम 8. मोती

शकेब जलाली

आ-के पत्थर तो मिरे सहन में दो चार गिरे
जितने उस पेड़ के फल थे पसे-दीवार[1] गिरे

मुझे गिरना है तो मैं अपने ही क़दमों में गिरूँ
जिस तरह साया-ए-दीवार[2] पे दीवार गिरे

तीरगी[3] छोड़ गये दिल में उजाले के ख़ुतूत[4]
ये सितारे मिरे घर टूट के बेकार गिरे

देख कर अपने दरो-बाम[5] लरज जाता हूँ
मेरे हमसाये[6] में जब भी कोई दीवार गिरे

वक़्त की डोर ख़ुदा जाने कहाँ से टूटे
किस घड़ी सर पे ये लटकी हुई तलवार गिरे

क्या कहूँ दीदः-ए-तर[7] ये तो मिरा चेहरा है
संग[8] कट जाते हैं बारिश की जहाँ धार गिरे

देखते क्यूँ हो 'शकेब' इतनी बुलन्दी[9] की तरफ़
न उठाया करो सर को कि ये दस्तार[10] गिरे

---

1. दीवार के पीछे 2. दीवार की छाया 3. अँधेरा 4 लकीरें 5. दरवाज़े और छत 6. पड़ोसी 7. गीली आँखें 8. पत्थर 9. ऊँचाई 10. पगड़ी

शकेब जलाली

जहाँ तलक भी ये सेहरा दिखाई देता है
मिरी तरह से अकेला दिखाई देता है

न इतनी तेज़ चले, सर फिरी हवा से कहो
शजर[1] पे एक ही पत्ता दिखाई देता है

ये एक अब्र[2] का टुकड़ा कहाँ-कहाँ बरसे
तमाम दश्त[3] ही प्यासा दिखाई देता है

वो अलविदाअ[4] का मंज़र वो भीगती पलकें
पसे-गुबार[5] भी क्या - क्या दिखाई देता है

सिमट के रह गये आखिर पहाड़ से क़द भी
ज़मीं से हर कोई ऊंचा दिखाई देता है

बुरा न मानिये लोगों की ऐबजोई[6] का
उन्हें तो दिन का भी साया दिखाई देता है

खिली है दिन में किसी के बदन की धूप 'शकेब'
हरेक फूल सुनहरा दिखाई देता है

---

1. पेड़ 2. बादल 3. जंगल 4. बिछड़ने का 5. गुबार के पीछे 6. दुर्गुण ढूंढने वाले

शमीम हनफ़ी

अपनी कमीनगी का सज़ादार मैं ही था
दरिया में ख़ुद को छोड़ के उस पार मैं ही था

रुसवाइयों[1] का दश्त[2] बदन की ज़मीन थी
ये और बात है कि ज़मींदार मैं ही था

कितने कटे-फटे हुए मंज़र[3] नज़र में थे
सच है कि अपनी जान का आज़ार[4] मैं ही था

सुब्हे-अज़ल[5] को तूने जो लिखी थी ख़ाक[6] पर
उस दास्तां का परतौ-ए-इज़्हार[7] मैं ही था

इक मौजे-ख़ूं[8] ने मुझ से जुदा कर दिया मुझे
उस अंजुमन[9] में साहबे-किरदार[10] मैं ही था

महरूमियों[11] की भीड़ थी पीछे लगी हुई
लाहासिली[12] का क़ाफ़ला-सालार[13] मैं ही था

1. बदनामियाँ 2. जंगल 3. दृश्य 4. दुःख 5. आदि प्रभात 6. रेत 7. व्यक्त का प्रतिबिम्ब 8. रक्त की लहर 9. सभा 10. चरित्रवान् 11. असफलताओं 12. व्यर्थ 13. सार्थपति

हर मंज़िले-मुराद[1] थी ग्रोझल निगाह से
हर रास्ते में क़हर की दीवार[2] मैं ही था

ऐसा लगा कि सारे महल बैठ जायेंगे
क़िस्सा ये है कि ज़लज़ला-ग्रासार[3] मैं ही था

डाला मुझी पे मेरी बसारत[4] का हर ग्रज़ाब[5]
तू ने भला किया कि ख़ताकार[6] मैं ही था

1. इच्छा का गंतव्य 2. दैवी ग्रापत्ति की दीवार 3. भूकम्प का निशान 4. दृष्टि
5. कष्ट 6. भूल करने वाला।

शम्स-उर-रहमान फ़ारूक़ी

देखिये बेवदनी कौन कहेगा क़ातिल है
सायाग्रासा जो फिरे उसको पकड़ना मुश्किल है

रश हर लफ़्ज से रिसते हुए ख़ूँ से घबरा कर
मैं जो खामोश रहा सबने कहा तू जाहिल है

तजर्बा दिल में रहे तो खुले ग्रांसू बन बन कर
ग्रौर काग़ज पे छलक जाये तो शम्ग्र-महफ़िल है

जो भरी दुनिया की संगीन अजायब नगरी में
ग्रपना सर ग्राप न फोड़े वो जहन्नुम[1]-वासिल[2] है

लबे-दरिया[3] को मिलाने का तरीका क्या होगा
दोनो झुकते है मगर बीच में दरिया हाइल[4] है

---

1. नर्क 2. संयुक्त 3. नदी का तट 4. बाधक

शम्स-उर-रहमान फ़ारूक़ी

अपनी ही शक्ल पे ज़ालिम ने बनाया है मुझे
यानी सदरंग अलामत[1] में छिपाया है मुझे

नोक इक नश्तरे-तेज़ाब[2] पिला कर उसने
खारे-अफ़सोस[3] के बिस्तर पे सुलाया है मुझे

यकक़दम पर्दा-ए-आवाज़[4] में रख कर खुद को
गोशे-खामोश[5] पर सितार बनाया है मुझे

मैं जो चमकूँ तो सरे-बर्ग[6] स्याही चमके
बेकरां[7] अंधे खलाओं[8] में बसाया है मुझे

तू है मुस्तग़नी-ए-हर[9] तर्ज़ तमाशा फिर भी
किसलिये ताक़े-तग़ाफ़ुल[10] में सजाया है मुझे

---

1. सैकड़ों रंग के प्रतीक 2. तेज़ाब का नश्तर 3. अफ़सोस का काँटा 4. आवाज़ का पर्दा 5. बहरा 6. पत्ती की नोक 7. अपार 8. अंतरिक्षों 9. हर शैली से निःस्पृह 10. उपेक्षा की ताक़

शहरयार

किस-किस तरह से मुझको न रुसवा[1] किया गया
गैरों का नाम मेरे लहू से लिखा गया

आया था मैं सदा-ए-जरस[2] की तलाश में
धोके से इस सुकूत[3] के सहरा में आ गया

क्यों आज इसका ज़िक्र मुझे खुश न कर सका
क्यों आज इसका नाम मेरा दिल दुखा गया

मैं जिस्म के हिसार[4] में महसूर[5] हूँ अभी
वो रूह की हदों से भी आगे चला गया

इस हादसे को सुनके करेगा यक़ीन कौन
सूरज को इक झोंका हवा का बुझा गया

1. बदनाम 2. घंटे की आवाज 3. खामोशी 4. परकोटा 5. कैदी

शाहिद अज़ीज़

साया-साया ख़ौफ़ज़दा[1] है
जाने क्या होने वाला है

सूरज-सूरज चिल्लाते हो
देखो सूरज डूब रहा है

मेरे अन्दर रहने वाला
मेरी बातें कब सुनता है

जाने कितनी सदियों से
ये रस्ता सुनसान पड़ा है

उससे आखिर कैसे बोलूँ
वो भी तो गूंगा बहरा है

गलियारे की तारीकी[2] से
सन्नाटा क्या पूछ रहा है

उसके घर को जलने दे
अपना घर तो बचा हुआ है

1. भयभीत 2. अंधेरे

शीन० काफ़० निज़ाम

बामो-दरो-सुकुफ़[1] का बदन चाटती है धूप
ज़ीनों को पार करके कहाँ आ गई है धूप

मुम्किन है ये कि भीड़ में 'संज्ञा' का वाप हो
इक बार ज़ोर से कहो कितनी कड़ी है धूप

ऐसे में खुश्क पत्तों की उम्मीद क्या करें
क़दमों बड़े हैं साये तो मीलों बड़ी है धूप

माही के ख़ार[2] से वो उलझता है रात भर
आफ़ाक़[3] के क़रीब पड़ी केंचुली है धूप

सौ-सौ जतन से उसका तराशा गया बदन
क़ुव्वत मिली किसी को, किसी को मिली है धूप

अब तो किसी को आरज़ू-ए-बालो-पर[4] नहीं
फिर किसके पर जलाने को पर तोलती है धूप

दरवाज़े सारे शहर के अन्दर से बंद है
अब के अजीब लोगों के पाले पड़ी है धूप

1. छज्जों, दरवाज़ों और छतों 2. मछली के कांटे 3. क्षितिजों 4. बाल और पर की इच्छा

शीन० काफ़० निज़ाम

बूंद बन-बन के बिखरता जाये
अक्स[1] आईने को भरता जाये

बन के कल कल जो गुजरता जाये
अपने वादे से मुकरता जाये

एक नद्दी है कि रुकती ही नहीं
एक तूफ़ान उतरता जाये

एक ही लय में बहे जाता है
और लगता है ठहरता जाये

शहर सागर का भी हमज़ाद[2] कहीं
मौज-दर-मौज[3] बिफरता जाये

अक्स माकूस[4] हुवा है जब से
अपनी नज़रों से उतरता जाये

एक कोंपल में सिमटने के लिये
पेड़ का पेड़ बिखरता जाये

---

1. छाया, प्रतिबिंब 2. सहजात 3. लहर में लहर 4. अधोमुख

साग़र-उल-क़ादरी

हमारी उम्र के दो चार दिन बढ़ा देगा
कोई तो जुर्म हो वो जिसकी ये सज़ा देगा

कभी वो हाथ पे, कपड़ों पे और ग़िलाफ़ों पर
लिखेगा नाम मिरा और कभी मिटा देगा

जो नाम लिखे हैं हमने अभी दरख़्तों पर
जवान होके तू शायद इन्हें मिटा देगा

है बादलों में फँसा आफ़ताब[1] उसका मिजाज
कभी वो याद करेगा कभी भूला देगा

यूँ रस्मो-राह बढ़ाओ न उससे तुम 'साग़र'
है जिस्म आग का उसका, तुम्हें जला देगा

---

1. सूरज

'सादिक़'

दरवाज़े को पीट रहा हूँ पैहम[1] चीख़ रहा हूँ
अन्दर आकर खुल जा सिम-सिम कहना भूल गया हूँ

यादों के टेलीवीज़न पर गिरयाँ[2] देख के उसको
ताज महल में तन्हा बैठा सिगरेट फूंक रहा हूँ

खोज में तेरी अनगिन ट्रामें और बसें छानी हैं
तारकोल की सड़कों पर मीलों पैदल घूमा हूँ

माँ की कोख से क़ब्र का रस्ता दूर नहीं था फिर भी
मैं जीवन की भूलभुलैयाँ से होकर गुज़र रहा हूँ

बरसों पहले बिखर गई थी टूट के जो सहरा में
उस लड़की के जिस्म के बिखरे टुकड़ों को चुनता हूँ

बेपायाँ आकाश के मक़नातीसी[3] चाल से बच कर
खौफ़ज़दा[4]-सा मैं धरती के सीने से चिमटा हूँ

1. लगातार 2. रोते हुए 3. चुम्बकीय 4. भयभीत

काश कहीं से मुझको ज़हनी यकसूई[1] मिल जाये
वादों के स्तूप बना कर तोड़ दिया करता हूँ

शायद मेरा दुख सुनने को वा हों गोश[2] किसी के
दिन भर बहरों-डूडों की नगरी में चिल्लाता हूँ

'सादिक़' मौला आँखों से माज़ूर[3] मुफ़क्करआसा[4]
अँधियारे कमरे में काली बिल्ली ढूँढ़ रहा हूँ

1. निश्चिन्तता 2. कान 3. लाचार 4. दार्शनिकों जैसा

सुल्तान अख़्तर

ग़में-दीरोज़[1] में इमरोज़[2] की तल्ख़ी[3] घोले
फिर वही हिज्र की रात आ गई जूड़ा खोले

नक़्शे-दिल कितने उभर आते हैं गम की सूरत
आपकी याद जब आ जाती है घूंघट खोले

दिल की दिल ही में न रह जाये, सरे-बज़्मे-वफ़ा[4]
सबके सब मुहर-ब-लब[5] हैं कोई, किस से बोले

इस तरह महवे-तरन्नुम[6] है तेरी याद अब के
जैसे कानों में कोई प्यार का अमरत घोले

अब कोई ग़म न जगायेगा तुझे ऐ 'अख़्तर'
साया-ए-ज़ुल्फ़ में तू चैन से शब भर सोले

---

1. बीते हुए कल का दुख 2. आज 3. कड़वाहट 4. प्रेम निभाने वाले लोगों की सभा 5. होंटों पर मुहर 6. तरन्नुम में मग्न

सुल्तान अख़्तर

हंगामों के क़हत[1] से खिड़की दरवाज़े मबहूत[2]
आँगन आँगन नाच रहे हैं सन्नाटों के भूत

बोझल आँखें पत्थरीले लब उजड़े हुए रुख़सार[3]
सब के काँधों पर रखे हैं चेहरों के ताबूत

अलग-अलग ख़ुद ही कर लेगी लम्हों की मीज़ान[4]
किसको फ़ुर्सत कौन गिने अब बुरे-भले करतूत

चमक रहे हैं मायूसी के तेज़ नुकीले दाँत
दिल के चौराहे पर ज़ख़्मी उम्मीदें मबहूत

हाल से अब समझौता करके ताज़ा दम हो लो
मुस्तक़बिल[5] तक ढो न सकोगे माज़ी का ताबूत

1. अकाल 2. स्तब्ध 3. कपोल 4 तराज़ू 5. भविष्य

हामदी काश्मीरी

कहीं तो सर फिरे बादल बरस गये होंगे
इक एक बूंद को सहरा तरस गये होंगे

अँधेरी रातों में वो आंख बन के जागता है
उसे भी रोशनी के ख्वाब डस गये होंगे

हवा के थमते ही घर-घर पुकार आया हूं
कहां न जाने मिरे हमनफ़स[1] गये होंगे

थे गर्द-गर्द[2] दरीचे, किवाड़ जालों के
कहा ये किसने वो घर फिर से बस गये होंगे

न आई कुछ खबर सतरंगे जज़ीरों[3] की
हवा के साथ वहां बुलहवस[4] गये होंगे

1. साथी-संगी 2. धूल-धूल 3. टापुओं 4. लोलुप

हामदी काश्मीरी

मिले थे पेड़ कई अर्ज़-हाल[1] क्या करते
फ़लक[2] के क़हर[3] से थे वो निढाल क्या करते

धुवां-धुवां थीं सवालों के कर्ब[4] से आँखें
लबों पे बर्फ़ जमी थी सवाल क्या करते

गरज रहा था समुन्दर घरों के अन्दर भी
वो फ़िक्र-जां,[5] ग़मे-मालो-मनाल[6] क्या करते

खुद अपनी ज़ात[7] थी परछाइयों का अंधा सफ़र
हम एतिमाद[8] किसी में बहाल क्या करते

दहक रहा था जहन्नम सियाह होंटों पर
वो लोग ज़िक्रे-हरामो-हलाल[9] क्या करते

पिघल रहे थे, सरों पर सियाह सूरज था
थे अपने वक़्त के अहले-कमाल[10] क्या करते

तिलिस्मे-रंगो-नवा[11] के असीर[12] थे, खुश थे
रिहाई[13] उनकी थी अम्रे-महाल, क्या करते

---

1. स्थिति का वर्णन 2. आकाश 3. कोप, दैवी कोप 4. दुख 5. जान की फ़िक्र 6. धन-संपत्ति का दुख 7. व्यक्तित्व 8. भरोसा 9. जाइज़ और नाजाइज़ का ज़िक्र 10. कला वाले 11. आवाज़ और रंग का धोखा 12. बन्दी 13. स्वतंत्रता

चेतन धरातल पर कभी अनुभूत ही नही किया गया था। और न ही जानी हुई चीजों को अनजानी हकीकतों की मौजूदगी का भय एवं अनजानी चीजों की अनजानी शक्तियों के संत्रास का पहले के शाइर को बोध हुआ था। भय और संत्रास का यह अनुभूत सम्बन्ध एवं फ़र्क़ भी इतना स्पष्ट रूप से पहले कभी महसूस ही नही किया जा सका। तो ऐसी व ऐसी ही अनेक बातों की चेतना के बिना वह साहित्य रचा-समझा नही जा सकता जिसे आम बोलचाल में नया साहित्य कहा जाता है। इसलिए जब पुराने मूल्यों से नई ग़ज़ल अनुभूत नही की जा सकी तो 'समझदार' लोग बिलबिलाने लगे और अपनी असमर्थता को नई ग़ज़ल के सर थोपने लगे। ऐसे लोगों के साथ हमें सहानुभूति प्रदर्शित करनी चाहिए।

नई ग़ज़ल की शोख़ी-से जब पोंगा पंडित बग़लें झांकते हैं तो टॉमस मान का यह कथन याद आता है, "अकलाकारों को कलाकार की जो चीज सबसे ज्यादा डराती है वह है उसका चुलबुलापना।" नई ग़ज़ल में भावना की कमी की शिकायत करने वाले शायद यह भूल बैठे हैं कि शाइरी भावनाओं के पोषण का नाम नही बल्कि भावनाओं को संस्कारित—जिसमें भावना स्वतन्त्र होकर भी उश्रृंखल न हो—करने का नाम है।

पुस्तक की गज़ल : एक यात्रा से